IMPACT FACTOR 5.473(SJIF)
UPA NATIONAL E-JOURNAL
Interdisciplinary Peer-Reviewed Journal
ISSN 2455-4375

बिरसा मुंडा और आजादी की लड़ाई

डॉ सी.पी. गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय हरदा मध्यप्रदेश
मो.नं.- 7974824118
Email Id -chandrapal.gupta@yahoo.com

सारांश:- *इतिहासकारों द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में हमेशा ही एक वर्ग विशेष को अग्रिम दल के रूप में मान्यता देकर उसका यशोगान किया जाता रहा है, जो एक सीमा तक उचित भी कहा जा सकता है, किंतु एक दूसरे वर्ग को पूरी तरह से हाशिए पर रखना न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है। भारतीय संस्कृति की विशेषता ही अनेकता में एकता रही है परिणाम स्वरूप यहां जब औपनिवेशिक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने व्यापार के माध्यम से स्वयं को स्थापित करना प्रारंभ किया, तब से ही इस देश की सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थापित समाज ने भी आजादी की लड़ाई में अग्रिम दस्तों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया और अपने प्राणोंत्सर्ग किए। विशेषकर इस समाज के आदिवासियों ने अपनी आजादी की लड़ाई को धार देते हुए न केवल गोरे अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी, बल्कि गोरे अंग्रेजों के तरफदार, चाटुकार और वफादार काले अंग्रेजों जैसे कि जमीदार, साहूकार और प्रशासनिक अधिकारियों व कर्मचारियों से अपने* ***जमीर, जंगल, जमीन और जल*** *के लिए संघर्ष किया। ऐसा ही छोटा नागपुर पठार विशेषकर वर्तमान झारखंड के निवासी मुंडाओं ने बिरसा मुंडा के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया और अपने प्राणों की आहुति देकर इतिहास में अमर बलिदानी के रूप में पृष्ठांकित हो गए, किंतु उन्हें वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका जो एक क्रांतिकारी बलिदानी को होना चाहिए। वर्तमान भारत में आजादी का अमृत महोत्सव पर्व मनाया जा रहा है, अमृत का मतलब ही है- मृत को जीवित करना अर्थात अब समय की मांग है कि इतिहास के गर्त में मृत पड़े स्वतंत्रता सेनानियों को अमरत्व प्रदान कर उन्हें न्यायोचित स्थान प्रदान कराया जाए।*

शोध प्रबंध के उद्देश्य -

प्रस्तुत शोध प्रबंध **'बिरसा मुंडा और आजादी की लड़ाई'** का प्रमुख उद्देश्य समाज के सभी वर्गों के योगदान को रेखांकित कर न्यायोचित स्थान प्रदान करना है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अगड़े और पिछड़े सभी वर्गों का समुचित योगदान था, तरीके जरूर अलग-अलग हो सकते हैं। जब संपूर्ण भारत को अंग्रेजों द्वारा व्यापार का दिखावा करके हथियाने का षड्यंत्र रचा जा रहा था और किसी को आभास भी नहीं था, कि अंग्रेज किस प्रकार से हमारे

देश को खोखला कर रहे हैं, तभी आदिवासियों की सूझ-बूझ और जातीय चेतना ने उन्हें आगाह कर दिया था कि अंग्रेजों को इस देश से भगाकर ही अपने नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध प्रबंध प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों पर आधारित है, जिसके लिए अन्य विभिन्न शोध पत्रिकाएं, शोध पत्र, और आदिवासियों के स्वतंत्रता संग्राम पर किए गए अन्य साहित्यिक कार्यों का विश्लेषण किया गया है।

परिकल्पना –

प्रस्तुत शोध-पत्र **'आदिवासी ही नहीं, आदि स्वतंत्रा सेनानी थे तिलका मांझी'** में वर्णित अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की कहानी का यदि निरपेक्ष रूप से अध्ययन किया जाए तो मालूम पड़ता है कि भारत के आदिवासियों का शोषण आजादी के पूर्व अंग्रेजों और जमींदारों व साहूकारों ने और आजादी के बाद अपने ही लोगों ने किया इस प्रकार उनका जीवन संघर्ष का पर्याय बन चुका है।

मुख्य कुंजी शब्द –

औपनिवेशिक, भू- बंदोबस्त, उत्पीड़न, जमीदार, साहूकार, सरदारी, दिकू, बिरसा, झूम खेती, आदि।

भूमिका –

भारत दुनिया के उन गिने-चुने दुर्भाग्यशाली देशों में से एक है, जिन्हें लंबे समय तक दूसरी जाति या समुदाय का गुलाम बनकर रहना पड़ा है। 1206 ई. से 1526 ई. तक तुर्क सुल्तानों का, और 1526 ई. से लेकर 1757ई. तक मुगलों का गुलाम रहा और इसके उपरांत अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हुआ और भारतीय पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ दिए गए और इस पराधीनता की अवधि में भारतीयों का ना केवल आर्थिक शोषण हुआ, बल्कि उनकी सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को ही छिन्न-भिन्न कर दिया गया। इसके साथ ही आक्रमणकारियों और साम्राज्यवादियों द्वारा भारतीयों पर विदेशी धर्म जबरन थोपे गए। जिसका प्रमुख उद्देश्य भारतीयों को उनकी जड़ों से ही बेदखल करना था, साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षी और शोषणकारी यह भली-भांति जानते थे कि जब तक भारत की ज्ञान और संस्कृत की समृद्ध परंपरा को क्षत-विक्षत नहीं करेंगे तब तक वह भारतीयों को अपने अधीन बनाने में सफल नहीं हो सकते। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने सर्वप्रथम अपनी संस्कृति को थोपना प्रारंभ किया और इसके उपरांत राजनीतिक सत्ता स्थापित करके भारतवासियों को अपना गुलाम बना कर 190 वर्षों तक भारत में शासन किया। दुनिया का कोई भी राष्ट्र अपनी संस्कृति के बिना ना तो विकास कर सकता है और ना ही स्थाई रूप से टिका रह सकता है किंतु भारतीय संस्कृति की संपन्नता, समृद्धता और सर्वग्राह्यता का ही यह प्रतिफल था कि इस संस्कृति

ने विदेशी आक्रांताओं को झंझावात के रूप में समझ कर कुछ क्षण के लिए सिर झुका दिया और जैसे ही झंझावात निकला वह पुनः उसी गौरव के साथ खड़ी हो गई और आज भी टिकी हुई है।

मुंडा विद्रोह के अंतर्निहित प्रमुख कारण –

जैसा कि सर्व विदित है कि कोई भी विद्रोह, आंदोलन या क्रांति लंबे समय से छिपे असंतोष के बीजों का ही प्रस्फुटन होता है। छोटा नागपुर के मुंडा आदिवासी भी अंग्रेजों के अनेक प्रकार के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार से असंतुष्ट थे। उनके असंतोष के प्रमुख कारणों में आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक थे, किंतु इसके अलावा भी अन्य गौण कारण भी उत्तरदाई थे।

आर्थिक कारण –

आदिवासी समाज सदैव से ही प्रकृति प्रदत्त जल, जंगल, जमीन और जानवरों पर अपना नैसर्गिक अधिकार मानकर परंपरागत खाद्यान्न उत्पादन और खाद्यान्न संग्रहण करता रहा है। मुंडा आदिवासी सदियों से अपनी जमीन, फसलों और अपने गांव के मालिक स्वयं होते थे किंतु जैसे ही ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, जमीदार, जागीरदार, सरकारी कानून, कचहरी, वन कानून, जज, जंगल के ठेकेदार और दलालों ने मिलकर सदियों के मालिक मुंडा आदिवासियों को गुलाम बना लिया गया। मुंडा अंचल में लगभग 600 मुंडा सरदार थे, जोकि धीरे-धीरे समाप्त हो गए।

साथ ही भारत में जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की और उसने अपने व्यापार, अपने देश के उद्योग धंधों के लिए कच्चा माल और भू राजस्व की अधिकतम वसूली के लिए नवीन भू-भाटक पद्धतियां अपनाईं, तो उन्होंने सर्वप्रथम बंगाल, बिहार और उड़ीसा में ही 1793 ई. में स्थाई बंदोबस्त प्रारंभ किया। इस व्यवस्था के अंतर्गत अंग्रेजों ने किसान और राजा के मध्य एक नवीन बिचौलिया वर्ग तैयार किया, जिसे जमींदार कहा जाता था। अंग्रेजों के यहां कई उद्देश थे एक तो वे अपना विश्वास पात्र वफादार वर्ग तैयार करना चाहते थे, दूसरा भारतीयों के शोषण के आरोप से बचना चाहते थे और तीसरा भारतीयों के आक्रोश का कोप भाजन भी नहीं बनना चाहते थे, अर्थात अंग्रेजों के लिए जमीदार वर्ग एक प्रकार से सुरक्षा कवच के रूप में कार्य कर सकता था।

परिणाम स्वरूप स्थाई बंदोबस्त लागू होने से जमीदारों ने ऊंची-ऊंची बोलियां लगाकर जागीरों के ठेके लेना प्रारंभ कर दिया, चूंकि भू-राजस्व की वास्तविक वसूली और बोली लगाई गई राशि में बड़ा अंतर था ऐसी परिस्थिति में जमींदारों के द्वारा निर्धारित समय और निश्चित लगान राजकोष में जमा कर पाना असंभव हो गया और सूर्यास्त के सिद्धांत के कारण बड़ी संख्या में जमींदारों की जागीरें नीलाम होने लगीं।

परिणाम स्वरूप जमींदार अपनी जागीरों को बचाने के लिए जंगलों को काट कर, ना केवल कृषि योग्य भूमि के विस्तार में लग गए, बल्कि साम, दाम, दंड व भेद और अपने लठैतों के माध्यम से किसानों से जबरन अधिकतम भू-राजस्व वसूल करने में लग गए और जिन्होंने भू राजस्व नहीं चुकाया उनकी जमीनें छीन ली गई। मुंडा अंचल का आदिवासी अब भूखा, लाचार, बेबस और जिंदा लाश की भांति जीवन जीने के लिए बेबश किया गया। जिससे आदिवासी मुंडा किसानों के अंदर असंतोष होना स्वाभाविक था। छोटा नागपुर के पठार के अनेक आदिवासी समूह अभी भी परंपरागत झूम खेती या स्थानांतरित कृषि पर विश्वास करते थे और वे प्राकृतिक संसाधनों का केवल जीवन निर्वाह के लिए ही उपयोग करते थे वे ना तो लालची थे और ना ही प्रकृति विरोधी। जब मुंडाओं की जमीन छीन ली गयी या यूं कहें कि मुंडा अंचल में ही मुंडा जमीन से बेदखल कर दिए गए, तो मुंडा सरदारों और मुंडाओं के सम्मुख विरोध करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह गया। इस क्षेत्र के लगभग 600मुंडा सरदारों ने ब्रिटिश प्रशासन और भारतीय जमीदारों के खिलाफ आगामी 15 वर्षों तक आंदोलन चलाया जिसे **सरदारी लड़ाई** के नाम से जाना जाता है। मुंडा आदिवासी समुदाय का कहना था कि यह **जल, जंगल, जानवर और जमीन उन्हें प्रकृति** से प्राप्त हुई है, और वही उसके मालिक हैं। इस जमीन पर जमींदारों का किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं है, परिणाम स्वरूप वे जमीदारों को किसी भी प्रकार का भू-राजस्व नहीं देंगे। अगर वह देंगे भी तो ब्रिटिश सरकार को। एक प्रकार से अभी भी मुंडा अंग्रेजों के विरोधी नहीं थे, किंतु जब उन्होंने देखा कि अंग्रेज जमीदारों, भू-राजस्व अधिकारियों और पुलिस वालों का भरपूर सहयोग कर रहे हैं, तब मुंडा अंग्रेजों के भी विरुद्ध हो गए।

इस प्रकार के वातावरण में जब उन्हें ऊर्जावान और नौजवान बिरसा मुंडा का साथ मिला, जिसने झाड़-फूंक और औषधीय उपचार से बचपन से ही अपने समाज और आसपास के लोगों की सेवा की थी, उस समाज ने बिरसा मुंडा का कंधे से कंधा मिलाकर साथ दिया।

वर्तमान झारखंड की मुंडा जनजाति ने अंग्रेजों की नीतियों पर अमल करने से मना कर दिया तब अंग्रेजों और उनके चाटुकार जमीदारों द्वारा उनकी जमीनें छीन कर उन्हें बेदखल कर दिया गया था। इसी के विरुद्ध बिरसा मुंडा ने मुंडा, उरांव और अन्य जनजातियों को संगठित करके उन जमीदारों और अंग्रेजों को अपने क्षेत्र से खदेड़ने का अभियान चलाया, जिन्होंने उन्हें उनकी पैतृक जमीन, जायदाद और संपत्ति से बेदखल कर दिया था।

धार्मिक कारण -

बिरसा मुंडा के जन्म से पूर्व यूरोपियन ईसाई मिशनरियों ने भारत के भोले-भाले आदिवासियों और गरीब लोगों को ईसाई धर्म में धर्मांतरित कराने का अभियान चलाया हुआ था। आदिवासियों और विशेषकर मुंडा जनजाति को ईसाई धर्म अपनाने के लिए ईसाई मिशनरियों द्वारा उन्हें तरह-तरह की प्रलोभन दिए गए। साथ ही मुंडाओं को भी यह उम्मीद थी कि ईसाई बनने के उपरांत उनकी जिंदगी पूरी तरह से बदल जाएगी और उन्हें भी सम्मान पूर्वक जीवन जीने का

अवसर और अधिकार प्राप्त हो जाएंगे किंतु यह दिवा स्वप्न शीघ्र ही टूट गया, जब अंग्रेजों ने उनका अन्य दलित जातियों के समान ही शोषण करना प्रारंभ कर दिया।

राजनीतिक कारण -

यद्यपि मुंडा विद्रोह का प्रारंभिक प्रमुख कारण आर्थिक था, मुंडा अपनी जमीन जायदाद पुनः प्राप्त करना चाहते थे। किंतु धीरे-धीरे इसने अपना स्वरूप बदल लिया और अब मुंडों का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी राज्य को उखाड़ कर मुंडा राज्य स्थापित करना था। 'अबुआ: दिशोम रे अबुआ: राज' अर्थात हमारे देश में हमारा शासन का नारा देकर भारत वर्ष के छोटानागपुर क्षेत्र के आदिवासी नेता भगवान बिरसा मुंडा ने अंग्रेजों की हुकूमत को जबरदस्त चुनौती पेश की। उन्होंने अंग्रेजों के सामने कभी घुटने नहीं टेके, ना ही सर झुकाया। बल्कि जल, जंगल, जानवर और जमीन के स्वामित्व के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध 'उलगुलान' अर्थात क्रांति का आह्वान करके उसकी चूलें हिला दी। क्योंकि अंग्रेज मुंडों के सबसे बड़े दुश्मन जमींदार, जागीरदार और साहूकारों का समर्थन कर रहे थे।

बिरसा मुंडा और उसका प्रारंभिक जीवन -

बिरसा मुंडा का जन्म सुगना मुंडा और कर्मी हाटू मुंडा के घर वर्तमान झारखंड के रांची जिले के खूंटी के निकट एक छोटे से गांव उलिहातु (या चालकद) में 15 नवंबर 1875 ईस्वी को पैदा हुआ था। **चूंकि बिरसा मुंडा का जन्म बृहस्पतिवार को हुआ था इसीलिए बिरसा मुंडा का नाम बिरसा पड़ा।** उनके परिवार में कुल 5 सदस्य थे जिनमें वह सबसे बड़ा था। अतः परिवार के पालन पोषण की जिम्मेदारी बिरसा मुंडा की थी। परिवार की आर्थिक स्थिति बेहद खराब होने के कारण और मौसी के चहेता होने के कारण **बिरसा** अपनी मौसी जानी के घर खटंगा में रहा और खटंगा के पास जयपाल नाग द्वारा संचालित सलगा स्कूल से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। जयपाल नाग बिरसा की कुशाग्र बुद्धि और जिज्ञासा से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने उसका अगली कक्षा हेतु 1886 ई. में दाखिला चाईबासा के लूथर क्रिश्चियन मिशनरी स्कूल में करा दिया। बिरसा मुंडा के माता-पिता पूर्व में ही ईसाई धर्म में परिवर्तित हो चुके थे और क्रिश्चियन मिशनरी स्कूल में प्रवेश लेने के समय बिरसा मुंडा का नाम परिवर्तित करके बिरसा डेबिड कर दिया गया। चाईबासा स्कूल में पढ़ते हुए एक बार पादरी डॉ नोट्रेट ने स्वर्ण राज्य का हवाला देते हुए कहा था कि यदि आदिवासी ईसाई बने रहेंगे और उनके आदेशों का पालन वफादारी से करेंगे तो ब्रिटिश सरकार मुंडा सरदारों की छीनी हुई भूमि, उन्हें पुनः वापस कर दी जाएगी । किंतु जब 1886-87 में मुंडा सरदारों ने जमीदारों और ठेकेदारों से अपनी भूमि वापस लेने के लिए आंदोलन चलाया तो ईसाई मिशनरियों ने आंदोलनकारियों की ही तीव्र आलोचना की। जबकि बिरसा मुंडा इस आंदोलन के पक्षधर थे परिणाम स्वरूप उन्हें और समस्त आदिवासियों को गहरा आघात लगा। बिरसा मुंडा के विद्रोही स्वभाव को देखते हुए चाईबासा क्रिश्चियन मिशनरी विद्यालय प्रबंधन ने उन्हें 1890 ई. में विद्यालय से निकाल दिया। **1886 से 1890 तक बिरसा ने चाईबासा मिशन स्कूल में अध्ययन के दौरान जाना की ब्रिटिश सरकार की नीति और नियत क्या है? वे समझ चुके थे कि ईसाई मिशनरियों और ब्रिटिश ईस्ट**

इंडिया कंपनी का भारत आने का उद्देश्य यहां के नागरिकों का कल्याण करना नहीं है, बल्कि इस देश के आर्थिक संसाधनों और नागरिकों का शोषण करना है। परिणाम स्वरूप बिरसा और उसके परिवार के साथ ही अनेक आदिवासियों ने ईसाई धर्म का परित्याग कर दिया, क्योंकि मुंडाओं और उनके सरदारों का पैतृक भूमि प्राप्ति का आंदोलन ईसाई मिशनरियों के विरूद्ध था और जर्मन लूथरन चर्च तथा कैथालिक मिशन ने आंदोलन का विरोध किया था।

परिणाम स्वरूप बिरसा मुंडा ने पुनः हिंदू धर्म स्वीकार कर लिया और ब्रिटिश राज को समाप्त करने के लिए प्रयास करना प्रारंभ कर दिया।

बिरसा बचपन से ही होनहार और प्रतिभाशाली था, वह बांसुरी बजाने और तीरंदाजी में बेजोड़ था। बिरसा मुंडा ने बचपन से ही बेगार, गरीबी, दरिद्रता, अभाव, असमानता, शोषण और अत्याचार जैसे अन्याय पूर्ण समाज को देखा था और उसने समझ लिया था कि मुंडों की इस बदहाली का कारण केवल अत्याचारी गोरे ही नहीं है बल्कि अपना ज़मीर बेच चुके काले गोरे भी हैं, जो उन पर और उनके समाज पर अत्याचार करके उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाते थे।

बिरसा मुंडा चाईबासा स्कूल छोड़ने के उपरांत बनगांव के जागीरदार जगमोहन के मुंशी आनंद पांडे के संपर्क में आया और उनसे उसने रामायण, महाभारत, गीता और आयुर्वेद का ज्ञान सीखा। जिससे वह भारतीय संस्कृति, आयुर्वेद और सामाजिक संगठन के ताने-बाने के ज्ञान से परिचित हुआ। अब वह भली-भांति समझ चुका था कि ईसाई मिशनरियों द्वारा भारतीय धर्म और संस्कृति की आलोचना करने का एकमात्र उद्देश्य ईसाई धर्म और संस्कृति को शक्ति और लालच के बल पर भारत में स्थापित करना है।

आयुर्वेद के ज्ञान ने बिरसा मुंडा के जीवन को पूरी तरह से बदल दिया। अब बिरसा मुंडा विभिन्न औषधीय पौधों का ना केवल उपयोग करने लगा बल्कि उसने नवीन औषधियों का प्रयोग करके अनेक असाध्य बीमारियों को ठीक करने का कार्य शुरू कर दिया। बिरसा मुंडा यह भली-भांति समझ चुका था कि जब तक समाज में वैचारिक क्रांति नहीं आएगी तब तक फिरंगियों से आजाद होना आसान नहीं होगा। उसने आदिवासी समाज को संगठित करके उन्हें एकजुट करना प्रारंभ किया, जिसमें उसके आयुर्वेद के ज्ञान और दैवीय शक्ति से ओतप्रोत होने की अफवाहों ने भी सहयोग दिया। परिणामस्वरूप मुंडा आंचल के गरीब, बीमार और परेशान लोगों का वह उपचार करने लगा। जिससे मुंडा आदिवासियों में यह विश्वास हो गया कि बिरसा मुंडा अलौकिक पुरुष है और वह भगवान सिंगबोंगा का दूत है। साथ ही वह हमारी सब की समस्याओं को सुलझाने के लिए इस धरती आबा अर्थात उद्धारक के रूप में अवतरित हुआ है।

इसी का लाभ उठाते हुए बिरसा मुंडा ने अपने समुदाय के लोगों को जागृत करके उनमें जनचेतना का संचार किया। उसने उनके आपसी द्वेष भावों को दूर करने का कार्य किया। अब मुंडा अंचल में बिरसा मुंडा की बातों का

असर जादू की तरह होने लगा और मुंडा, उरांव और खड़िया समुदाय पर बिरसा मुंडा का प्रभाव शिर चढ़कर बोलने लगा वे उसके एक आदेश पर मर-मिटने को तैयार हो गए।

जैसा कि कहा जाता है कि जन समुदाय को प्रभावित करने का सबसे प्रभावी और असरदार तरीका धार्मिक भावनाओं को उभारना होता है। परिणाम स्वरूप बिरसा मुंडा ने भी धर्म का सहारा लेते हुए स्वयं को आदिवासियों के भगवान सिंगबोंगा का दूत या संदेशवाहक या पैगंबर कहा। बिरसा मुंडा ने स्वयं कहा कि उसे भगवान सिंगबोंगा के दर्शन हुए हैं और उसने आप सभी लोगों के लिए संदेश भेजा है कि:-

1) मैं आप लोगों के असाध्य रोगों को ठीक करूं।

2) मैं आपको फिरंगियों, जागीरदारों, जमीदारों एवं साहूकारों से आजाद कराऊं।

3) अब कोई भी मुंडा कंपनी सरकार के आदेशों का पालन नहीं करे।

4) पुलिस, जागीरदार, साहूकार और मजिस्ट्रेट की बेगारी नहीं करे।

5) सिंगबोंगा एक है, वही हमारा संरक्षक, पालक और संहारक है।

6) भूत प्रेत नहीं होते हैं, इस पर विश्वास करें।

7) अनेक देवी देवताओं की उपासना नहीं करनी है, केवल दिव्य प्रकाश रूपी सिंगबोंगा की उपासना करें।

8) पशुओं की बलि नहीं चढ़ाएंगे, देवताओं की पूजा चावल और पाई से करें।

9) पशुओं की सेवा करें।

10) शांति के प्रतीक सफेद झंडे को घरों में लहराएं।

11) पशु हत्या से भगवान सिंगबोंगा नाराज हो जाते हैं, इसलिए अब हम पशु हत्या नहीं करें।

12) मदिरापान नहीं करें।

13) सभी मुंडा अंचल के आदिवासी अपने घरों में एक तुलसी का पौधा लगाएं।

14) सभी मुंडा अंचल के आदिवासी एकजुट रहेंगे, किसी भी प्रकार के झगड़ों का निपटारा पंचायत से ही करवाएं।

15) बृहस्पतिवार को छुट्टी रखें।

16) गाय की सेवा करें।

17) शाकाहारी बनें।

18) मांस नहीं खाएं।

19) बूढ़े-बड़ों का आदर करें और कभी भी आपसी लड़ाई ना करें।

20) सभी मुंडा यज्ञोपवीत धारण करें।

उक्त सभी संदेश से स्पष्ट होता है कि बिरसा मुंडा का अब पूरी तरह से ईसाई धर्म और ईसाई मिशनरियों की कार्यपद्धति से विश्वास उठ चुका था ।

जब मुंडा अंचल के आदिवासियों ने बिरसा मुंडा को अलौकिक, सिंगबोंगा का दूत और अवतार समझा, तब स्वाभाविक था कि वे सब बिरसा मुंडा के नेतृत्व को भी स्वीकार करने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। बिरसा मुंडा ने संकल्प लिया कि वे अपनी जाति और समुदाय को वर्तमान दुर्दशा, शोषण, असमानता, बेगार, सांस्कृतिक पराधीनता, और धार्मिक उत्पीड़न से मुक्ति दिलाएंगे और ब्रिटिश राज को समाप्त कर मुंडा राज्य स्थापित करेंगे। उन्होंने नारा दिया **'अबुआः दिशोम रे अबुआः राज'** अर्थात हमारे देश में हमारा शासन के नारे का शंखनाद किया बिरसा मुंडा ने कहा कि अब दिकुओं अर्थात विदेशियों का राज्य समाप्त होगा ।

बिरसा मुंडा की बढ़ती हुई लोकप्रियता और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध **उलगुलान** अर्थात क्रांति के आह्वान से ब्रिटिश सरकार डर गई। दूसरी तरफ मुंडा आदिवासियों का आत्मविश्वास और बिरसा मुंडा के प्रति उनका विश्वास लगातार बढ़ रहा था। अतः अंग्रेज सरकार ने 23 अगस्त 1895 को जिला पुलिस अधीक्षक, **जी आर के मेयर्स,** बनगांव के जागीरदार **बाबु जगमोहन सिंह तथा बीस सशस्त्र पुलिस बल को दंड प्रक्रिया संहिता 353 और 505 के तहत बिरसा मुंडा को गिरफ्तार करने के लिए भेजा गया। पुलिस** दल शाम 3 बजे **चालकद** पहुंचा. बिरसा के घर की उन्होंने चुपके से घेरबंदी कर ली, उस समय बिरसा मुंडा एक कमरे में सो रहा था तभी गिरफ्तार कर लिया गया।

बिरसा ने अपने साथ चल रही भीड़ को शांत रहने के लिए कहा। बिरसा मुंडा को रांची कलेक्टर के सम्मुख प्रस्तुत किया गया बाद में मुकदमा चलाने के लिए उसे खूंटी ले जाया गया और उन पर राजद्रोह, शांति भंग करने और लोगों को उकसाने के आरोप में 2 वर्ष का सश्रम कारावास और ₹50 के जुर्माना की सजा दी गई। तब एक बार ऐसा लगा कि बिरसा मुंडा की उलगुलान की चाहत सदैव के लिए समाप्त हो गई, किंतु वास्तव में ऐसा नहीं था, चिंगारी को ज्वाला का रूप धारण करना अभी बाकी था। बिरसा को 30 नवंबर 1897 को रांची जेल से रिहा कर दिया गया।

जिसने 3 मार्च 1900 ई. को बिरसा मुंडा और उसके आदिवासी छापामार सैनिकों को मकोपाई वन (चक्रधरपुर) में गिरफ्तार कर लिया। बाद में 9 जून 1900 को रांची जेल में 25 वर्ष की आयु में भगवान बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गई। जिस तरीके से उसकी मृत्यु हुई उस पर संदेश होना स्वाभाविक था, यद्यपि सरकार ने दावा यही किया कि बिरसा मुंडा की मृत्यु हैजा से हुई है, जबकि वास्तविकता यह है कि सरकार बिरसा मुंडा की गतिविधियों से आतंकित हो गई थी और उसने जेल में ही उसे धीमे-धीमे जहर देना प्रारंभ किया था और इस प्रकार उसकी मृत्यु का मूल कारण उसको दिया गया स्लो प्वाइजन था ।

समीक्षा –

अन्य आदिवासी समुदायों की भांति झारखंड और बिहार क्षेत्र में निवास करने वाली आदिम जाति मुंडा भी अंग्रेजों की कुत्सित और शोषणकारी प्रवृत्ति का शिकार हुई किंतु उन्होंने भारत के अन्य नागरिक समुदायों की तुलना में अंग्रेजों की इस शोषण कारी प्रवृत्ति को बहुत जल्दी ही पहचान लिया। साथ ही मुंडा जनजाति अंग्रेजों के साथ साथ अपने ऊपर अत्याचार करने वाले काले अंग्रेजों से भी परेशान थी और भी किसी भी कीमत पर अपना जल, जंगल और जमीन पर किसी अन्य को अधिकार जमाते हुए नहीं देखना चाहती थी और ना ही वे दूसरों का बेगार करने के लिए तैयार थे। परिणाम स्वरूप मुंडा और उरांव जैसी जनजातियों में ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला अंदर ही अंदर सुलग रही थी, और जब उसे बिरसा मुंडा जैसा ऊर्जावान नौजवान नेतृत्वकर्ता प्राप्त हुआ तो फिर अंदर झलक रही ज्वाला बाहर आ गई, और अंग्रेजों के विरुद्ध अपने प्राणोंत्सर्ग तक अनवरत चलती रही। बिरसा मुंडा का महत्त्व इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी उस क्षेत्र में लोग बिरसा मुंडा को भगवान की तरह ही पूज्यनीय और आदरणीय मानकर उसकी पूजा करते हैं अतः यही बिरसा मुंडा के निस्वार्थ समाज सेवा का सच्चा प्रतिफल है।

संदर्भ ग्रंथ :

- डॉ कामेश्वर प्रसाद (2016) भारत का इतिहास, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स पटना
- प्रोफेसर विपिन चंद्र (1995), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- ग्रोवर बी एल और यशपाल (1994) आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन, एस चन्द एंड कंपनी लि. रामनगर नई दिल्ली
- शर्मा एल.पी. (14वां संस्करण), आधुनिक भारत का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा-3
- पांडे एस. के.(2014), आधुनिक भारत का इतिहास, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद
- https://www.dilsedeshi.com/biography/birsa-munda-biography-hindi/
- https://youtu.be/FC5inIuDBoU
- https://youtu.be/3NmKN08Yi0w
- https://youtu.be/S5jnmHNc0Ag
- https://youtu.be/g7AYKrSEvPA